वर्ष : २१ अङ्क : ४ जुलाई १९९७ ई०

जैन भवन

तित्थयर

११८२

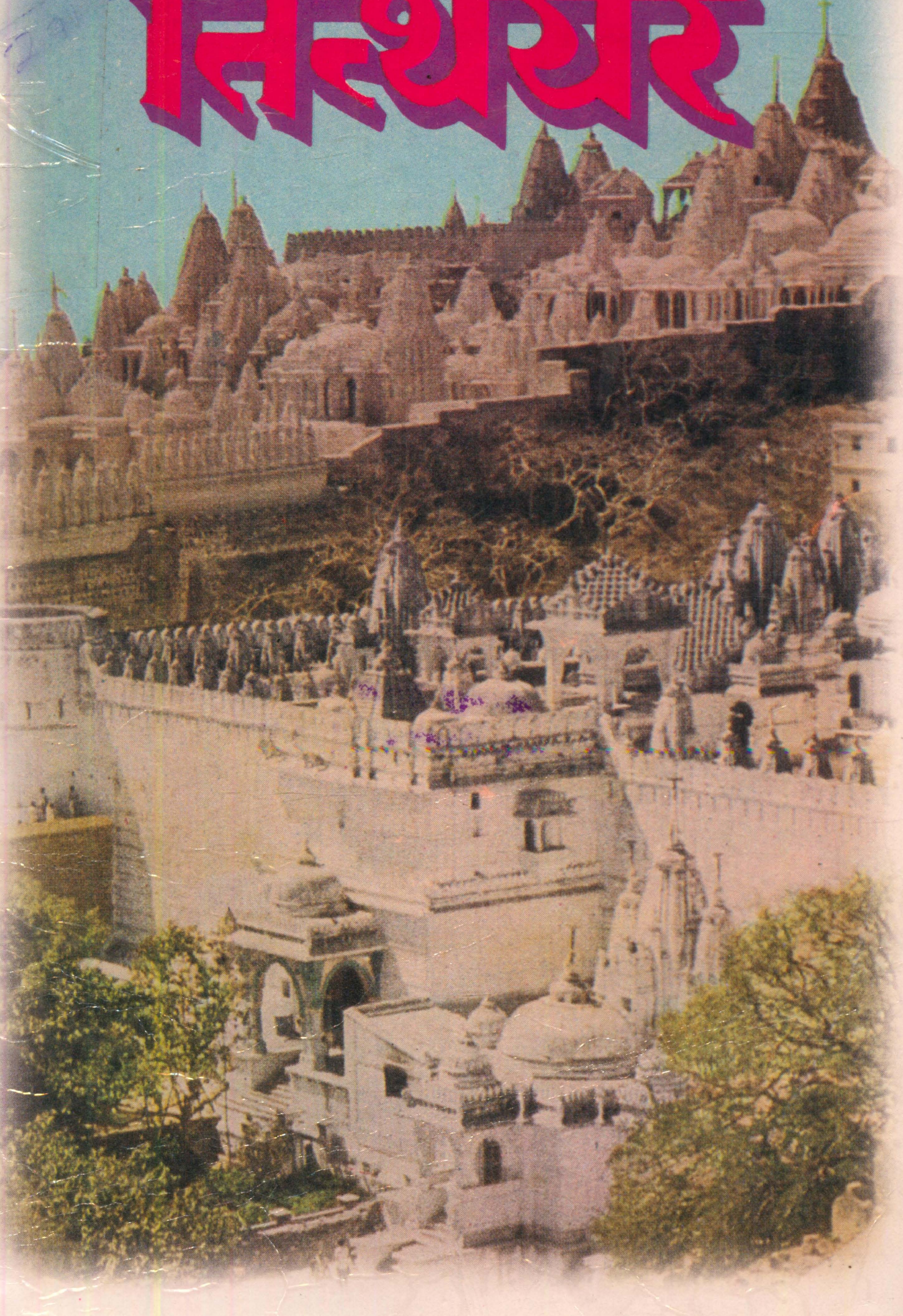

1212

'जिसे तुम मारना चाहते हो वह तुम ही हो।'

Sethia Oil Industries Ltd.

Manufacturers of Rice Brain, D.O.B Mustard D.O.C, Neem deoiled Powder, ground nut Deoiled Cakes, Mahua deoiled cakes etc.

Plant
Post Box No. 5
Lucknow Road
Sitapur - 261001 (U.P)
Ph : 42017/397/073
Gram - Sethia - Sitapur
Fax : 42790

Registered Office
143, Cotton Street
Cal - 700 007
Ph : 2384329/
8471/5738
Gram - Sethia Meal

Executive Office
2, Indian Exchange Place
Calcutta - 700 007
Ph : 2201001/9146/5055
Telex : 217149 SO IN IN
Fax : 2200248

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष २१ : अंक ४
जुलाई १९९७

□

संपादन
राजकुमारी बेगानी
लता बोथरा

□

आजीवन : एक हजार रुपये
वार्षिक शुल्क : पचपन रुपये
प्रस्तुत अंक : पाँच रुपये

□

प्रकाशक
जैन भवन
पी-२५, कलाकार स्ट्रीट,
कलकत्ता-७०००७
दूरभाष : २३८२६५५

□

मुद्रक
अनुप्रिया प्रिन्टर्स
६ ए, बड़ौदा ठाकुर लेन,
कलकत्ता-७

सूची

शौरीपुर का राजकुमार	८३
श्रावक-जीवन	९१
वसुदेवहिंडी और वृहत्कथा	१००
राजा सम्प्रति	१०९

OUR CUSTOMERS ARE OUR MASTERS

You can safely choose Oodlabari Tea for finest CTC teas, flavoury leaf teas and health giving Green Teas at reasonable prices. You can also phone at our Office for any assistance in selection of teas.

Insist on purchasing following packets

Anyone desirous of taking dealership for our teas may kindly contact at following address :

THE OODLABARI COMPANY LIMITED
NILHAT HOUSE, 6TH FLOOR
11, R. N. MUKHERJEE ROAD, CALCUTTA-700 001

Calcutta office Phone : 248-1101, 248-9594, [illegible]

शौरीपुर का राजकुमार

पूर्णचन्द जैन

पूर्वानुवृत्ति

द्वारका

कोटि-कोटि हाथों से बहकर।
निकली थी जब श्रम की धारा।
काँप उठे अम्बर औ धरती।
नर के पौरुष से सब हारा॥

हिले इन्द्रों के आसन तभी
सुर-असुर सभी थे देख रहे
वह महायज्ञ था मानव का
सबके हित उससे बंधे रहे॥

शत-शत प्रणाम तुमको मानव
है तीन लोक में बड़ा तूही
जो नहीं कर सकते देव-इन्द्र
वह कर दिखलाता तूही॥

नारायण नहीं बने स्वर्ग में
वे इसी लोक में बनते हैं
पैदा ना होते नारायण
नर ही नारायण बनते हैं॥

तीर्थंकर भी बने यहीं पर
मोक्ष यहीं से ही पाया था
समकित भी तो यहीं उगी थी
स्वर्ग उसे नहीं लाया था ॥

देवों में इक होड़ लगी थी
वे नरभव कैसे पा जावें
भक्ति भाव से कर्म खपाकर
वे शिवपुर किस विधि जा पावें ॥

श्रम के ही उस यज्ञ कुण्ड में
द्वारा का था निर्माण हुआ
वैभव उसका देख विश्व में
संघीय शक्ति का मान हुआ ॥

शंका तभी जाग उठी थी
नर-नारी सब ही चिंतित थे
सागर ने तोड़ी जब मर्यादा
उठे प्रश्न ये जटिल थे ॥

चिंता थी आगत भविष्य की
यह सागर लील नहीं लेवे
चर्चा ये चल रही वहाँ पर
श्री नेम कुँवर तब यूँ बोले ॥

थे अतुल ज्ञान के स्वामी वे
प्रकृति के रहस्य जानते थे
किस तरह प्रकृति संरक्षण दे
यह तथ्य वह पहिचानते थे ॥

प्रकृति ने सागर सृष्टि किये
नदियों का भी निर्माण किया
और शैल शिखर को ढाल ढाल
जन-जन का ही कल्याण किया ॥

यह सब उसके श्रम की महिमा
ऋतुओं का जो निर्माण हुआ
सब कुछ कर अर्पण मानव को
धरती का भी सम्मान हुआ ॥

संघ शक्ति और जनहित ही
प्रकृति के हैं चिर-सहचर
थे भुला गये जो भी इनको
वे हुए तभी जग से बाहर

बनवासी राम प्रभु ने जब
लंका की ओर प्रयाण किया
सागर ने पथ रोका जब
तब प्रकृती का ही आह्वान किया ॥

प्रश्न नहीं केवल सीता का
यह प्रश्न बना था नारी का
अत्याचारी को दंड मिल सके
यह प्रश्न उठा एक भारी था ॥

असुरों का वह भीषण ताण्डव
था धैर्य बांध को तोड़ रहा
जग को उनसे छुटकारा दे
जग उस मानव को खोज रहा

देख रही थी प्रकृति सभी यह
सागर को था फिर समझाया
जन कल्याण हेतु सागर की
धारा को था फिर रुकवाया ।।

श्रम दान हुआ तब ही भारी
जनता ने सागर पाट दिया
बढ़ चली राम की सेना तब
असुरों का फिर संहार किया ।।

वह भग्न सेतु अब भी गाता
उस महा पुरुष की यश गाथा
सागर भी उसे संजोये है
देकर अतीत की परिभाषा ।।

ब्रज में भी जब असुर राज था
मानवता थी जब लुप्त हुई
कंस और उसके भृत्यों से
यह धरती भी जब त्रसित हुई ।।

माधव ने भी जन हित में ही
फिर कंस शमन था कर डाला
उत्तर अंचल में शान्ति रहे
ये था उनका अभीष्ट प्यारा ।।

जरासंध क्रोधित हो करके
चुपचाप आक्रमण करता था
घात और प्रतिघात नीति से
जनता को पीड़ित करता था ।

नीति निपुण योगेश्वर ने भी
थी नीति यही फिर अपनायी
शत्रु की परिधि से बाहर जा
द्वारा की सृष्टि करवायी॥

शांति और सद्भाव व्यवस्था
संस्कृति के आधार यही
जन जीवन में यदि शान्ति रहे,
तो सुख का पारावार नहीं॥

प्रश्न था उठा फिर धरती का
द्वारका कहाँ निर्माण करें
प्रकृति ने उन्हें आश्वस्त किया
सागर की ओर प्रयाण करें॥

सागर मर्यादा तोड़ चला
हट गया तनिक वह पीछे को
धरती का आविर्भाव हुआ
श्रम की धार सींचने को।

सम्यक दर्शन और ज्ञान चरित्र
तप और त्याग का ये दर्शन
द्वारा के नर और नारी सब
जब तक रहें करते पालन

प्रकृति भी इसे संजोयेगी
सागर भी मान इसे देगा
इससे तुम विमुख हुए जब भी
भीषण दावानल धधकेगा॥

संकल्प किया फिर जन-जन ने
हम यही मार्ग अपनायेंगे
सदनीति और सद्धर्म जगा
द्वारा को स्वर्ग बनायेंगे ॥

अभिराम दृश्य वाली नगरी
फिर भारत में विख्यात हुई
विश्वकर्मा की कृति इन्द्रपुरी
फिर ठिठकी और लजाय गयी ।

तरुणाई

चंद्रा की शुभ्र चाँदनी ने
एक नृत्य वितान बनाया था
रजनी के पिछले पहरों में
दुग्ध–रस बरसाया था ॥

अब शैशव का था अंत हुआ
उषा की प्रथम किरण चमकी
यौवन की मधुमय लहर उठी
तरुणाई भी फिर आ झलकी ॥

सुन्दर चकोर सी चितवन थी
माधुर्य मयी था रूप प्रबल
नर श्रेष्ठ बने थे नैम कुंवर
उत्पन्न हुआ था शौर्य प्रखर ॥

आशा के केन्द्र बने सबके
माता ने साध मनायी थी
ग्रहस्थ धर्म में दीक्षित हों
ऐसी आस सजाई थी ॥

श्री नेम कुंवर थे वीर व्रती
वे आत्म ज्ञान से प्रेरित थे
पुद्गल अरु चैतन्य भेद से
वे पूर्ण रूप से अवगत थे॥

वे ब्रह्मचर्य के धारक थे
अरु परम साध्य के साधक थे
किस बिध से कम निर्जरा हों
वे उसी मार्ग के धारक थे॥

माता और पिता दोनों ही
गहन निराशा में थे डूबे
माधव और अनुज जन थे सब
इन्हीं व्यथाओं से ऊबे॥

एक दिवस कौतूहल बस
नेम कुँवर वहाँ घूम रहे
वासुदेव की आयुध शाला
देखें और फिर झूम रहे॥

दैविक शस्त्रों का यह संग्रह
अद्भुत और निराला था
शूरवीर वासुदेव कृष्ण को
यह संग्रह तो अति प्यारा था॥

इन दैविक शस्त्रों को लेकर
नेमीश्वर थे वहाँ मोड़ रहे
तीर्थङ्कर की प्रचुर शक्ति से
वे इन सबको थे तोल रहे॥

उनकी शक्ति समक्ष सभी ये
बस निर्विकार से लगते थे
पौरुष की वह थाह ले सकें
नहीं ऐसे वे दिखते थे।।

पाञ्चजन्य शंख देख तभी
कौतुहल मन में जाग उठा
कुरुक्षेत्र की रण भूमि में
क्या इसका ही था नाद हुआ।।

इसके ही तो प्रथम नाद से
उन आहुतियों का यज्ञ हुआ
इसकी ही उस थिरकन पर
उस युग का ही अन्त हुआ

कल्पनाओं के उसी लोक में
श्री नेमि कुंवर थे डूब रहे
उसी क्षणों में पाञ्चजन्य को
उठा लिये और फूंक दिये।।

दसों दिशांये कांप उठी तब
जब नाद हुआ ऐसा भारी
मृत्युलोक और इन्द्र लोक भी
अरु कांप उठी द्वारा सारी।।

सब ओर यही कोलाहल था
क्या वसुदेव कोई अन्य हुआ
द्वारा के पावन युग का
इतनी जल्दी क्या अन्त हुआ

श्रावक जीवन (१०)

आचार्य श्री विजय भद्रगुप्त सूरीश्वरजी महाराज

पूर्वानुवृत्ति

परम कृपानिधि महान् श्रुतधर आचार्यश्री हरिभद्रसूरिजी स्वरचित 'धर्म-बिन्दु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में गृहस्थ का विशेष धर्म बता रहे हैं।

बारह व्रतमय विशेष धर्म स्वीकार करने का भावोल्लास प्रगट होने पर, अच्छे मुहूर्त में आप व्रत ग्रहण करेंगे। व्रत-ग्रहण के दिन या अगले दिन आप को परमात्मा की पुष्प, धूप, विलेपनादि उत्तम द्रव्यों से पूजा करनी चाहिये। वस्त्र, पात्र औषधादि से गुरुदेव की भक्ति करनी चाहिये। भोजन-वस्त्र आदि से सार्धमिकों की सेवा करनी चाहिये। स्वजनों को भी परितृप्त करना चाहिये। स्वजनों को जो प्रिय-प्रशस्त वस्तु हो, उनको देनी चाहिये। दीन-अनाथ-दरिद्र लोगों को उचित दान देना चाहिये।

यह सब आपको स्वशक्ति के अनुसार करना है। सब को गौरव देते हुए करना है। यानी किसी के भी मन को दुःख हो, वैसे नहीं करना है। सब के मन को प्रसन्न करने का है। अपने आसपास रहनेवाले लोगों की चित्त-प्रसन्नता यथासम्भव बनाये रखने से अपना भी चित्त प्रसन्नता से भरा रहता है। इस से धर्म आराधना में मन जुड़ता है। शुभ भावों की धारा बहती है। दूसरे लोगों के मन में धर्म के प्रति उपादेयभाव पैदा होता है। उनके मन में भी व्रतमय विशेष धर्मग्रहण की शुभ भावना पैदा होती।

धर्मक्षेत्र में एकांगिता :

प्रश्न : ऐसे प्रसंग में परमात्मपूजा और गुरुसेवा तो करते हैं, परन्तु स्वजनों के प्रति प्रायः दुर्लक्ष्य होता है, दीन-अनाथ-रोगी··· तो याद ही नहीं आते !

महाराजश्री : शायद आप लोगों को मालूम ही नहीं होगा कि ऐसे विशिष्ट धार्मिक प्रसंगों में यह सब करने की जिनाज्ञा है। जिनाज्ञा सर्वांगी होती है। जो लोग सर्वांगी जिनाज्ञा को नहीं समझ पाते हैं, वे एकांगी बन जाते हैं। यहाँ, इस ग्रंथ में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि स्वजन, दीन, अनाथ वगैरह की उचित सेवा करनी चाहिये।

प्रश्न : स्वधर्मीवात्सल्य करते हैं न ?

महाराजश्री : क्या स्वधर्मीवात्सल्य में दीन, अनाथ, रोगी वगैरह को भोजन देते हो। भोजन देना तो दूर रहा, आ जाएँ तो धक्का मारकर बाहर निकाल देते हो न ? स्वधर्मीवात्सल्य में भी क्या सार्धमिकों का गौरव करते हो ? जिन सार्धमिकों के साथ अनबन हो, उनके साथ प्रेमभाव स्थापित करते हो ? सार्धमिकों का आपस का प्रेमभाव बढ़ता रहे, आपस के झगड़े शान्त हो जाय, इसलिये तो स्वधर्मीवात्सल्य की धर्मक्रिया बतायी गई है। परन्तु आप लोग क्रिया का हार्द समझते नहीं हैं। एकांगी बन गये हो न ?

दूसरी बात, जब बारह व्रत लेने हैं, श्रावकधर्म अंगीकार करना है तब किसी भी मनुष्य के साथ वैरभाव तो रहना ही नहीं चाहिए। किसी के साथ वैरभाव हो तो उसको मिटाना चाहिए। इससे हृदय निर्मल बनता है और निर्मल हृदय में धर्म का प्रवेश होता है। निर्मल हृदय में धर्म टिकता है। निर्मल-हृदय में धर्म वृद्धि पाता है।

अब मुझे बारह व्रतों का स्वरूप बताना है। एकाग्र मन से सुनने और समझने का प्रयत्न करना। फिर सोचना कि आप ये व्रत ग्रहण कर सकते हैं या नहीं !

बारह व्रत :

बारह व्रत के तीन विभाग बताये गये हैं। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत।

—अणुव्रत यानी महाव्रतों की अपेक्षा छोटे व्रत।

—गुणव्रत यानी अणुव्रतों पर उपकार करनेवाले व्रत।

—शिक्षाव्रत यानी साधुधर्म के अभ्यासरूप व्रत।

अणुव्रत :

अणुव्रत पांच बताये गये हैं। १. स्थूल प्राणातिपातविरति, २. स्थूल मृषावादविरति, ३. स्थूल अदत्तादानविरति, ४. स्थूल अब्रह्मविरति ५. स्थूल परिग्रह विरति।

प्राणातिपात (हिंसा,) मृषावाद (असत्य) अदत्तादान (चोरी), अब्रह्म (मैथुन) और परिग्रह, ये पाँच महापाप हैं। इन पापों से आंशिक रूप में विराम पाना यानी 'विरति'

गुणव्रत :

गुणव्रतों का पालन किये बिना अणुव्रतों को जैसी चाहिये वैसी शुद्धि नहीं हो सकती है। यानी अणुव्रतों का पालन दिन—प्रतिदिन जो शुद्ध-विशुद्ध होता जाना चाहिये वह नहीं होता है। इसलिये गुणव्रतों को स्वीकार करना और पालन करना अति आवश्यक बन जाता है। ये गुणव्रत तीन हैं।

पहला गुणव्रत है दिग्व्रत। दिशाओं का व्रत। दस दिशाओं की अपेक्षा से यह व्रत बताया गया। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण ये दिशायें हैं। नैऋत्य, वायव्य, इशान और अग्नि—ये विदिशायें हैं। एक उर्ध्वदिशा और एक अधोदिशा। इस प्रकार दश दिशायें हैं। इन दिशाओं में कितना दूर जाना… यानी गमनपरिमाण करने का होता है।

दूसरा गुणव्रत है भोग-उपभोग परिमाण का। इसमें दो शब्द है: भोग और परिभोग। जो वस्तु एक बार ही भोगी जा सकती है, उसको भोग कहते हैं जैसे भोजन। जिस वस्तु को एक बार खा लिया, उसी वस्तु को पुनः नहीं खाया जा सकता। जबकि उपभोग उसको कहते है कि जिस वस्तु को बार-बार भोगा जा सके। जैसे वस्त्र, मकान, स्त्री वगैरह। एक ही वस्त्र को पुनः पुनः पहना जा सकता है। एक ही मकान का बार-बार उपयोग किया जा सकता है और एक ही स्त्री का पुनः पुनः भोग किया जा सकता है। इस भोग और उपभोग का परिमाण करना दूसरा गुणव्रत है।

तीसरा गुणव्रत है अनर्थदंड विरति का। 'अर्थ' का यहाँ प्रयोजन है! जो पाप प्रयोजन से किये जाते हैं वे पाप 'अर्थदंड' कहे जाते हैं। जो पाप बिना प्रयोजन किये जाते हैं वे पाप 'अनर्थदंड' कहे जाते हैं। जो पाप बिना प्रयोजन अनेक होते हैं। धर्म का प्रयोजन, स्वजनों का प्रयोजन, अपनी इन्द्रियों के प्रयोजन····वगैरह। प्रयोजक से भी पापक्रिया की जाती है इसलिये 'दंड' कहा गया है। 'अर्थदंड'! बिना प्रयोजन जो पाप किये जाते हैं वे 'अनर्थदंड कहे जाते हैं। यह अनर्थदंड चार प्रकार का बताया गया है। १. अपध्यान—आचरित, २. प्रमाद आचरित, ३. हिंस्रप्रदान और ४. पापकर्मोपदेश। इस चारों प्रकार के अनर्थ दंड से विरति पाना तीसरा गुणव्रत है।

शिक्षापद :

'शिक्षा' यानी साधुधर्म का अभ्यास। इस अभ्यास के चार पद हैं, यानी चार स्थान हैं।

पहला स्थान है *सामायिक*। *टीकाकार* आचार्यदेव ने यहां 'सामायिक' के तीन अर्थ किये हैं। मोक्षमार्ग की आराधना में सामर्थ्यवाले तीन तत्त्व—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति यानी सामायिक। यह पहला अर्थ है।

राग और द्वेष के बीच-मध्यस्थ रहता हुआ जीव सम्यग्दर्शन ज्ञान और और चारित्र की प्राप्ति करे, यह सामायिक का दूसरा अर्थ है।

तीसरा अर्थ है—सभी जीवों के प्रति मैत्रीभाव की प्राप्ति ये तीनों अर्थ 'समायः' शब्द से निकाले गये हैं। कितने अच्छे अर्थ बताये हैं टीकाकार आचार्यश्री ने!

पापप्रवृत्ति का त्याग कर, निरवद्य-निष्पाप योगानुष्ठान रूप-जीव परिणाम, सामायिक है।

दूसरा शिक्षापद है पौषध—उपवास। जो आत्मभाव को पुष्ट करे वह पौषध। अष्टमी, चतुर्दशी वगैरह पर्व के दिनों में दोषों से मुक्त बन, गुणों के साथ रहना—उसको 'उपवास' कहते हैं। कहा गया है—

उपावृत्तस्य दोषेभ्यः सम्यग्वासो गुणैः सह।
उपवासः स विज्ञेयो न शरीरविशोषणम्॥

'दोषों से मुक्त बन, गुणों के साथ अच्छी तरह रहना, उस को 'उपवास' समझना, शरीर के शोषण को उपवास नहीं मानना।' पौषध में चार गुणों के साथ रहना होता है—१. शरीरशुद्धि, शरीरशोभा नहीं करना, २ ब्रह्मचर्य का पालन करना, ३. धंधा—व्यापार नहीं करना, ४. आहार-भोजन का सर्वथा या आंशिक त्याग करना। पौषधोपवास का अभ्यास साधुधर्म का अभ्यास है।

तीसरा शिक्षापद है—'देशावकाशिक'।

पहले ग्रहण किये हुए दिशापरिमाण व्रत का प्रतिदिन स्मरण कर प्रत्याख्यान करना, पच्चक्खाण करना, देशावकाशिक नाम का शिक्षापद है।

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के शासन में रहे हुए साधु-साध्वी-श्रावक और श्राविका अतिथि हैं। ये अतिथि घर आने पर भक्ति से खड़ा होना चाहिये, अतिथि को बैठने के लिये आसन देना चाहिये, पैर धोने चाहिये, चन्दन से विलेपन करना चाहिये और अपने-अपने वैभव के अनुसार उनको भोजन प्रदान करना चाहिए। वस्त्र और औषध प्रदान करना चाहिए। आवास और दूसरी भी आवश्यक वस्तु देनी चाहिए। इसको 'संविभाग' कहते हैं। यह दया-दान नहीं है। यह संविभाग है। यह संविभाग न्याय-नीति से उपार्जित द्रव्य से किया जाता है। और साधु-साध्वी वग़ैरह को कल्पनीय द्रव्यों से किया जाता है।

योग्यतानुसार व्रत-प्रदान :

जो मनुष्य इन सभी बारह व्रतों का पालन करने में सक्षम हो, उसको सभी व्रत देने चाहिये। जो मनुष्य मात्र पाँच अणुव्रत ही चाहता है, उसको पाँच अणुव्रत ही देने चाहिये। जो मात्र शिक्षापद अथवा गुणव्रत ही लेना चाहता हो, उसको उतने ही व्रत देने चाहिये। यानि आपलोग जितने चाहो, उतने व्रत ग्रहण कर सकते हैं। कितनी करुणा की है ज्ञानी पुरुषों ने! आप की व्रतपालन की जितनी भावना हो और जितनी शक्ति हो, तदनुसार आप व्रत ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु एक बात निश्चित होती है—सम्यक्त्व की। चाहे एक व्रत लें, या बारह लें, मूल में सम्यक्त्व तो होना ही चाहिये। बिना

सम्यक्त्व, कोई भी व्रत विशिष्ट फल नहीं देता है। इसलिये सर्वज्ञ शासन के प्रति श्रद्धावान् होना तो अनिवार्य ही है।

अतिचारों से बचते रहो :

सम्यग्दर्शन-सहित ग्रहण किये हुए व्रतों का पालन बहुत ही जाग्रति के साथ करने का होता है। अतिचार न लग जाय—विराधना न हो जाय, इस बात की जाग्रति रखनी चाहिये। जाग्रति नहीं होगी तो सम्यग्दर्शन-गुण भी क्षतिग्रस्त हो जायेगा। पुनः-पुनः दोष लगने से गुण जीर्ण-शीर्ण हो जायेगा और एक दिन गुण नष्ट भी हो सकता है।

'सम्यग्दर्शन' गुण को कौन-कौन से दोषों से बचाये रखना है—यह समझना आवश्यक बन जाता है। दोषों का ज्ञान, दोषों से बचने के लिए होना आवश्यक होता है। इसलिये सर्वप्रथम आपको सम्यग्दर्शन को दूषित करने वाले पाँच दोष—पाँच अतिचार बताता हूँ। सावधान बनकर, एकाग्र बन कर सुनना।

शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्य दृष्टि की प्रशंसा और उनकी संस्तवना ये पाँच अतिचार हैं।

१ जिनवचन में शंका मत करें

जिनेश्वरों के वचनों में शंका नहीं करनी चाहिये। शंका के दो प्रकार बताये गये हैं—१. 'देशशंका' और २. सर्वशंका।

जिन वचनों में कुछ दो-चार बातों को लेकर शंका करता है तो वह 'देशशंका' कही जाती है। एक उदाहरण से समझाता हूँ—

आगमों में 'भव्य' जीव और 'अभव्य' जीव का वर्णन आता है। यह पढ़ कर शंका करें कि 'दोनों में जीवत्व होने पर भी एक जीव भव्य क्यों और दूसरा जीव अभव्य क्यों? जब हेतु नहीं मिलता है···तो शंका हो जाती है।

'सर्वशंका' यानी समग्र आगमों के विषय में शंका हो जाय! जैसे कि 'जैनधर्म के सभी सिद्धान्त प्राकृतभाषा में निबद्ध हुए हैं, तो क्या ये सारे सिद्धांत कल्पनामात्र होंगे? सही नहीं होंगे?'

एक बात निश्चित रूप से समझ लेना कि विश्व की सभी बातें तर्क से नहीं समझी जा सकती हैं। कुछ तत्त्व के हेतु होते हैं, कुछ तत्त्व के हेतु नहीं होते हैं। यानो विश्व में दो प्रकार के तत्त्व होते हैं—हेतुग्राह्य और अहेतुग्राह्य। हेतुग्राह्य तत्त्वों को हेतुओं से समझ कर स्वीकार करें और अहेतुग्राह्य तत्त्वों को वैसे ही स्वीकार कर लेना चाहिये। जिसके हेतु है ही नहीं, वे हेतु कहां से लायेंगे? जीवतत्त्व का, अजीव तत्त्व का, पुण्य-पाप आदि तत्त्वों का ज्ञान हेतुओं से प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु भव्यत्व, संसार और मोक्ष में जीवों की संख्या वगैरह बातें

अहेतुगम्य हैं। कोई तर्क नहीं है, कोई हेतु नहीं है इन बातों को समझने के लिये हां, कोई अवधिज्ञानी या केवलज्ञानी महापुरुष हेतु दे सकते हैं, तर्क वे सकते हैं, वे समझा सकते हैं। हमारे जैसे मात्र मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी के लिये असंभव है तर्क / हेतु से समझना और समझाना। इसलिये, जब भी कोई आगम की बात समझ में नहीं आये तो शंका नहीं करना। शंका से श्रद्धा निर्बल बनती है।

अन्य दर्शनों की कांक्षा नहीं करें

श्रद्धा को निर्बल बनाने वाला अतिचार है कांक्षा का। इस कांक्षा के भी दो प्रकार है : देशकांक्षा और सर्वकांक्षा।

सर्वज्ञभाषित दर्शन के अलावा दूसरे कोई भी एक-दो दर्शन पसन्द आ जायें और उस दर्शन को स्वीकार करने की इच्छा हो जाय, इसको कहते हैं देशकांक्षा। जैसे कि—'मुझे जैनदर्शन से ज्यादा अच्छा बौद्धदर्शन लगता है। मैं बौद्धदर्शन को स्वीकार करूँ ?' अथवा 'मुझे वेदान्त दर्शन अच्छा लगता है। मैं वेदान्त दर्शन को स्वीकार करूँ ?'

सर्वकांक्षा करनेवाला सभी दर्शनों की आकाँक्षा करता है। उसको सभी दर्शनों की मान्यतायें अच्छी लगती हैं। इससे सम्यग् दर्शन मलिन होता है।

हमें जैनदर्शन के प्रति ही श्रद्धावान बने रहना है। चूंकि जैन दर्शन सर्वज्ञ दर्शन है, यथार्थ दर्शन है। हम जैन हैं—इसलिये जैन दर्शन के पक्षपात की बात नहीं करता हूं, परन्तु सभी दर्शनों का अध्ययन करने पर लगा है कि जैनदर्शन ही श्रेष्ठ और सच्चा दर्शन है। ऐसा दर्शन पाने के बाद अन्य सम्पूर्ण दर्शनों की स्पृहा-काँक्षा क्यों करनी चाहिये ?

जैन दर्शन का अच्छा अध्ययन करना चाहिये। जैनदर्शन का तत्त्वमार्ग, आचार मार्ग वगैरह इतने सुन्दर और बुद्धिगम्य हैं, आप पढ़ोगे तब मालूम होगा। एक दो पुस्तक पढ़ने से काम नहीं बनेगा। हर विषय के ग्रन्थों का तलस्पर्शी अध्ययन करना होगा। तब आपको जैन दर्शन से लगाव हो जायेगा। आप की श्रद्धा वज्रलेप जैसी बन जायेगी। आप को दुनिया का कोई भी व्यक्ति विचलित नहीं कर सकेगा।

बुद्धि को स्थिर रखें :

तीसरा अतिचार है 'विचिकित्सा' का। टीकाकार आचार्यश्री ने विचिकित्सा का अर्थ किया है मतिविभ्रम। बुद्धि की चंचलता ! मतिविभ्रम होने पर मनुष्य सोचता है—जैनदर्शन है तो अच्छा, परन्तु मेरे जैनधर्म के पालन करने पर, मुझे उसका फल मिलेगा या नहीं ? जैन किसान-कृषिकर्म करता है, उस को कभी फल मिलता है, कभी नहीं भी मिलता है। वैसे, मैं जिनेश्वर के बताये

हुए व्रत—नियमों का पालन तो करता हूं, मुझे फल मिलेगा या नहीं ?' ऐसे संकल्प-विकल्प (विचिकित्सा) करने से सम्यग्दर्शन मैला होता है।

सम्यग्दर्शन के गुण को तो आघात लगता ही है, विचिकित्सा से पापकर्म का बन्धन भी होता है। ऐसे पापकर्म बंधते हैं कि जब वे पापकर्म उदय में आते हैं तब जीवात्मा को भयानक कष्ट सहने पड़ते हैं। अतः मति को, बुद्धि को स्थिर रखो। "मैं जैनधर्म की आराधना करता हूं इसलिये मुझे उसका फल अवश्य प्राप्त होगा", इस विश्वास को अविचल रखो।

बुद्धि में विभ्रम पैदा करनेवाली बातें मत सुनो। ऐसी किताबें भी मत पढ़ो। जिनवचनों के ऊपर अविचल विश्वास, अनमोल सम्पत्ति को सुरक्षित रखना है।

अपूर्ण—असर्वज्ञों की प्रशंसा नहीं करें :

श्रद्धा की सम्पत्ति को सुरक्षित बनाये रखने के लिये, ऐसे लोगों की प्रशंसा नहीं करना कि जो सर्वज्ञ नही हैं जो पूर्ण नहीं हैं। अलबत्ता, ऐसे बौद्ध, कपिल, कणाद वगैरह के दर्शनों में कुछ-कुछ अच्छी बातें हैं कि जो जैनदर्शन से मिलती-जुलती हैं, फिर भी उन की प्रशंसा नहीं करनी चाहिये। जैसे कि "ये लोग पुण्यशाली हैं···इनका जन्म सार्थक है ··ये लोग दयालु हैं····" इस प्रकार प्रशंसा नहीं करनी चाहिये। प्रशंसा करने से अर्थ यह निकलता है—"हम पुण्यशाली नहीं हैं, हमारा जन्म निरर्थक है····हम दयावान नहीं है···। चूंकि हमने जैनदर्शन को स्वीकार किया है !'

प्रशंसा करने में विवेक होना चाहिये। अन्य धर्मों में रहे हुए अच्छे तत्त्वों की विवेक से प्रशंसा की जा सकती है। जैसे कि—"बौद्धदर्शन का क्षणिकवाद संसार के प्रति मनुष्य को वैरागी बनाता है अनासक्त बनाता है···। पतंजलि महर्षि का योगदर्शन योग की अच्छी प्रक्रिया बताता है। वेदान्तदर्शन भी मुक्ति पाने का उपदेश देता है···।' वगैरह।

प्रशंसा का अर्थ ऐसा नहीं निकलना चाहिये कि 'वे लोग कृतार्थ हो गये और हम भटक गये, उन्होंने परम तत्त्व पा लिया और हम खाली रह गये !' अविवेक से अन्य दर्शनों की प्रशंसा करने से सम्यग्-दर्शन—गुण को धक्का लगता है।

अन्य दर्शनवालों की संस्तवना नहीं करें :

जैसे अन्य दर्शनवालों की प्रशंसा नहीं करना है वैसे उनके साथ रहना नहीं है और परिचय नहीं करना है। "संस्तवना" का यह अर्थ समझना है। संवासजनित परिचय नहीं करना है।

साथ रहने से भोजन, वस्त्र वगैरह का आदान-प्रदान होता है, आपस में वार्तालाप होता है। यदि अन्य दर्शनी आप से ज्यादा बुद्धिमान् है, धनवान् है, थोड़ा शास्त्रज्ञानी है·· तो वह आप की श्रद्धा को हिला देगा। आप को उसके धर्म की ओर खींच लेगा। इसलिये, अन्य धर्मवालों के साथ परिचय-सम्बन्ध बांधने से पूर्व सोच लेना कि बुद्धि, ज्ञान और धन किसके पास ज्यादा है। यदि आपके पास ज्यादा है, तब तो परिचय करने में चिन्ता की बात नहीं है। यदि उसके पास ज्यादा है, तो आप परिचय से दूर रहना।

प्रश्न : वर्तमान परिस्थिति में हमें दूसरे धर्मवालों के साथ रोजाना सम्पर्क रखना पड़ता है।

महाराजश्री : मैं जानता हूँ। इसलिए मार्गदर्शन देता हूं। आप लोग इतने निर्बल हो गए हो, पैसे के लिए इतने पागल हो गये हो कि किसी भी व्यक्ति का सम्पर्क—परिचय कर लेते हो। आप को अपने 'सम्यग्दर्शन' गुण को सुरक्षित रखने की इच्छा भी है? कभी आप को विचार आता है कि "मेरी आत्मा में सम्यग्दर्शन गुण प्रकट हुआ है या नहीं? मुझे मेरे इस गुण को सुरक्षित रखना चाहिये। इस गुण को दाग लगे···वैसा मुझे नहीं करना चाहिये। मुझे कोई सुख छोड़ना पड़ेगा तो छोड़ दूंगा, परन्तु मेरी श्रद्धा को हिलने नहीं दूंगा। आते हैं, ऐसे विचार?

है न आपका संकल्प कि 'जैसा भी दुःख आये, मैं मेरे वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा को छोड़कर अन्य किसी रागी-द्वेषी और मिथ्यात्वी देव-देवी के पास नहीं जाऊँगा। वैसे, किसी भी सुख की इच्छा से मैं अन्य देवी-देवता के पास नहीं जाऊँगा।'

प्रश्न : हमारे कुछ भाई वीतराग परमात्मा के मन्दिर में नहीं आते हैं····परन्तु रोकडिया हनुमान के मन्दिर में जाते हैं।

महाराजश्री : हनुमानजी जैसे वैरागी बने थे, वीतरागी बने थे, वैसा बनने के लिए जाते होंगे?

प्रश्न : नहीं जी, हनुमानजी से धन लेने। हनुमानजी से संसार के सुख पाने जाते हैं।

महाराजश्री : ऐसे लोगों को सम्यग्दर्शन गुण का पता ही नहीं होता है। आत्मगुणों से वे अनभिज्ञ होते हैं। ऐसे लोग, किसी भी धर्मवाले के साथ व्यापारिक सम्बन्ध रखते हैं। उन लोगों के साथ खाते-पीते हैं, घंटे भर वार्तालाप करते हैं और अब तो शादी-विवाह भी कर लेते हैं। कोई-कोई जैन मुसलमानों के साथ भी शादी करने लगे हैं न?

अपनी बात तो उन लोगों के लिये है कि जिन को 'सम्यग्दर्शन' गुण सुरक्षित रखना है। जो सम्यग्दर्शन गुण का महत्व समझते हैं, ऐसे महानुभाव इन पांच दोषों से बचते रहते हैं।

सम्यक्त्व की महिमा :

सम्यक्त्व—सम्यग्दर्शन की महिमा समझनेवाला मनुष्य ही इन शंका वगैरह पांच दोषों से बचने का प्रयत्न करता है। सम्यक्त्व की महिमा बताते हुए आचार्यदेव श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने 'समराइच्च कहा' में कहा है—

तओ तम्मि पत्ते समाणे से जीवे बहुयकम्ममल मुक्के,
आसन्ननियसरुवभावे पसन्ने, संविग्गे, निव्विण्णे, अणुकंपापरे,
जिणवयण रुई आवि हवई।

जब जीव सम्यग्दर्शन गुण पाता है तब वह

१. बहुत कर्मों से मुक्त बनता है,
२. आत्मस्वरूप की प्राप्ति अल्पकाल में करने वाला बनता है,
३. प्रसन्नचित्त बनता है,
४. संविग्न बनता है, यानि विशुद्ध परमात्म स्वरूप-गुरुस्वरूप और धर्म-स्वरूप को जाननेवाला और उसमें श्रद्धावान बनता है।
५. निर्वेदवाला बनता है, यानी संसार के सुखों में विरक्त बनता है।
६. अनुकम्पावाला बनता है, यानि दयालु बनता है।
७. जिनवचनों में उसकी अभिरुचि बनती है।

ऐसी आत्मा, कर्मों के शुभ-अशुभ विपाकों को जानती हुई सर्वकाल, अपराधी के प्रति भी स्वाभाविकता से क्रोध नहीं करती है। उपशम भाव में रहती है।

ऐसी आत्मा (सम्यक्त्वधारी) आयुष्य कर्म का बन्धन करती है तो अवश्य वैमानिक देवलोक का आयुष्य बांधती है। उसकी दुर्गति नहीं होती है।

इसलिये सम्यक्त्व को, सम्यग्दर्शन को शंका वगैरह दोषों से बचाते रहें।

(क्रमशः

वसुदेवहिंडी और बृहत्कथाश्लोकसंग्रह

(पूर्वानुवृत्ति)

इतने में सानुदास को किसी प्रमदा के आक्रन्दन की ध्वनि सुनाई दी। आख्यायिका, कथा, काव्य और नाटकों में ऐसी प्रमदा का वर्णन सुनने में नहीं आया था। सानुदास ने उससे दुःख का कारण पूछा। प्रमदा ने बताया—आप ही मेरे दुःख के कारण हैं। सानुदास ने उसे ढाढ़स बंधाया। प्रमदा ने कहा कि वह उसके शरीर की कामना करती है। उसका नाम गंगदत्ता था। वह उसे खींचकर अपने भवन में ले गयी। सानुदास को विश्राम करने के लिये कहा गया; उसके पीने के लिये पुष्करमधु मंगवाया। सानुदास ने सोचा कि अवश्य ही गंगदत्ता यक्षी होनी चाहिए, अन्यथा मनुष्यलोक में दुर्लभ पुष्करमधु उसके पास कहाँ से आया? सानुदास ने पुष्करमधु की गंध से अधिवासित वासमन्दिर में प्रवेश किया। तत्पश्चात् दोनों सुहृद्गोष्ठी में सम्मिलित हुए। गंगदत्ता अपने हाथ का सहारा देकर सानुदास को ले गयी जब अपने मित्रों को सानुदास दिखायी न दिया तो वे लोग आश्चर्य में पड़ गये। एक ने कहा कि उसे कोई यक्षकन्या सिद्ध हो गयी है, इसलिए वह अदृश्य हो गया है। किसी ने ताली बजाकर हँसते हुए अदृश्य यक्षीभर्ता को नमस्कार किया। उन्होंने सानुदास को निश्चित होकर गंगदत्ता के घर जाने को कहा, और वे स्वयं अपने स्थान को लौट गये।

सानुदास अपने मित्रों द्वारा पुष्करमधु का पान कराकर ठगा गया था, लेकिन कान्ता और आसव के रसास्वाद के आनन्द के कारण वह उनपर नाराज नहीं हुआ। सूर्य के अस्ताचल की ओर गमन करने पर सानुदास ने गंगदत्ता के गृह में प्रवेश किया।१

दोनों का आनन्दपूर्वक समय व्यतीत होने लगा। एकदिन दारिका सानुदास को उसके घर लेकर गयी। सानुदास ने अपनी माता से पिताजी के स्वर्गवास का समाचार सुना। गम्भीर शोक से पीड़ित जान राजा ने उसे बुलाया। आभूषण, वस्त्र, और चंदन आदि से उसका सत्कार कर परम्परागत श्रेष्ठीपद की रक्षा करने के लिए उससे अनुरोध किया। कुछ समय बाद ध्रुवक ने उपस्थित होकर सानुदास से निवेदन किया कि वह शोक-पीड़ित गंगदत्ता को आश्वासन प्रदान करे। सानुदास ने उत्तर दिया—उसकी बाल्यावस्था गुजर चुकी है,

१. सानुदासकथानामक १८वें सर्ग का प्रथम भाग १—९२), पृ० २१९-२६।

इसलिए अपनी माता और मातामही के मार्ग का सेवन करना ही उसके लिए श्रेयस्कर है। तथा चिरकाल तक सतीधर्म का पालन करते हुए भी आखिर तो वह वेश्या ही है। कुटुम्बियों के लिए गणिकाओं में आसक्ति रखना और उनके शोक से संतप्त होने पर शिष्टाचार प्रदर्शित करना ठीक नहीं। लेकिन ध्रुवक के बहुत कहने-सुनने पर सानुदास उसे आश्वासन देने के लिए उसके घर पहुंचा। सानुदास के वियोग में गंगदत्ता अत्यन्त कृश हो गयी थी। सानुदास को देखकर वह क्रन्दन करने लगी। सानुदास ने उसे ढाढ़स बँधाया। दोनों ने एक साथ स्नान किया, जल की अञ्जलि प्रदान की। मदिरा से पूर्ण चषक मंगाया गया। गंगदत्ता की माता ने दुःखनाश करने के लिए तर्पण करने का अनुरोध किया गणिका की माता के अनुरोध पर सानुदास ने त्रिफला का स्वादयुक्त मदिरा का पान किया। मदिरा के नशे के कारण पितृशोक विस्मृति के गर्भ में पहुंच गया। सानुदास के आदेश पर परिचारिकाओं द्वारा मदिरा उपस्थित की गयी। मदिरा और काम के वशीभूत हो समय व्यतीत होने लगा।

(मित्रों ने एक चाल चली।) एक दिन गणिका की माता ने एक गणिका द्वारा सानुदास को कहलवाया—"तेरी सास कहती है कि तू रूक्ष है इसलिये तेरे शरीर में अभ्यंग लगाने की आवश्यकता है। अभ्यंग के अभाव में गंगदत्ता भी परुष हो गयी है। अतः तुम्हें शरीर में तेल का मर्दन करना चाहिए।" सानुदास के वस्त्र उतारकर उसके शरीर पर कटु तेल का मर्दन किया गया फिर उसे कहा गया कि थोड़ी देर दारिका का अभ्यंग किया जायेगा, इसलिए वह नीचे चला जाये। छठी मंजिल पर उसे रत्न संस्कार करने वाले दिखाई दिये। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा कि सब कलाओं में निष्णात होने के कारण उसके सामने उन्हें लज्जा आती है। उन्होंने उसे अलङ्कारकर्म के लिए पाँचवीं मंजिल पर जाने की प्रार्थना की। पाँचवीं मंजिल पर से चित्रकारों ने चौथी पर भेज दिया। तत्पश्चात् घटदासियों ने उसके ऊपर गोबर का पानी डाल उसे बाहर निकाल दिया। प्रासाद पर बंदिजनों की ध्वनि सुनाई पड़ी।'१

श्रेष्ठीपुत्र की देशविदेशयात्रा

(अ) **वसुदेवहिंडी** : चारुदत्त की देशविदेशयात्रा : वसंततिलका गणिका के घर से चलकर देशविदेश की यात्रा के पश्चात् अपनी माता और पत्नी से पुनर्मिलन।

(आ) **बृहत्कथाश्लोकसंग्रह** : सानुदास की देशविदेश यात्रा : सानुदास ने अपने घर की ओर गमन किया। पुरवासी उसे धिक्कार रहे थे। जो भी कोई

१. वही, दूसरा भाग, ९३-१३२ पृ० २२७-३०!

मित्र उसे सामने देखता, वही घृणा से मुँह मोड़ लेता। जिस घर के आँगन में वह जाता, वहीं लोग उसके ऊपर गोबर का पानी फेंकते। इस प्रकार लोगों से तिरस्कृत हो, अपने गृहद्वार पर पहुंचा। घर में प्रवेश करते हुए सानुदास को द्वारपाल ने रोक दिया। सानुदास ने प्रश्न किया कि क्या माता मित्रवती[1] अब नहीं रही ? द्वारपाल ने उत्तर दिया—उसकी अनाथ माता घर बेचकर अपने पौत्र और वधू के साथ अन्यत्र चली गयी है। प्रथम कक्ष में जहाँ बढ़ई काम कर रहा है, वहाँ जाकर पूछो। ज्ञात हुआ कि दरिद्रता के कारण वह अपनी पुत्रवधू के साथ दरिद्रवाटक (दरिद्रों की बस्ती) में जाकर रहने लगी है। वहाँ पहुंचकर सानुदास ने अनेक बालकों से घिरे हुए, नीम के नीचे बैठे अपने पुत्र दत्तक को देखा। वह उनका राजा बना हुआ था। सानुदास दत्तक के पीछे-पीछे चलकर जीर्ण-शीर्ण फटी-टूटी चटाइयों को जोड़कर बनाई हुई कुटिया के आँगन में पहुंचा। दासी ने उसे पहचानकर मित्रवती को खबर दी। माँ ने, जिस अवस्था में वह बैठी थी उसी अवस्था में बाहर निकलकर सानुदास का आलिंगन किया। ऐसा लगा कि वह गाढ़ निद्रा में सोयी हुई है। न वह कुपित हुई और न उसने श्वास ही लिया। उसके नेत्रों से अविरल जल की धारा बह रही थी। दरिद्रता की मूर्ति के समान वह जान पड़ी। सानुदास के स्नान के लिए पड़ौस से, लाख से बन्द किये हुए छेदवाला और ओठ-टूटा पानी का घड़ा लाया गया। लेकिन वह घड़ा फूट गया और सानुदास को पुष्करिणी में जाकर स्नान करना पड़ा। कांजी और कोदों को वह बड़े मुश्किल से गले उतार सका। एक रात एक लाख वर्ष की भाँति बितायी। इस परिस्थिति में सानुदास को बहुत वैराग्य हुआ। प्रातःकाल होने पर उसने अपनी माँ के सामने प्रतिज्ञा की कि प्रक्षपित द्रव्य का चौगुना धन कमाकर ही वह घर में पाँव रक्खेगा। उसकी माता ने उसे परदेश जाने से रोकते हुए कहा कि वह किसी-न-किसी तरह उसकी और उसकी स्त्री की आजीविका चलायेगी। लेकिन सानुदास ने एक न सुनी। माता को प्रणाम करके नरक के समान उस दरिद्र वाटक से निकल कर वह चल दिया। माता कुछ दूर तक उसके साथ आई। उसने ताम्रलिप्ति में उसके मामा के घर जाने का अनुरोध किया। पितृबंधुओं की अपेक्षा मातृबंधुओं की ही उसने प्रशंसा की।

सानुदास ने पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में फटी पुरानी छतरी और जूते लिये, कन्धों पर पुराना चर्म और भोजन-पात्र ले जाते हुए यात्री दिखाई पड़े। सानुदास के परिचारक बन, उसे रम्य कथाएँ सुनाते हुए वे आगे

१. वसुदेवहिंडी में मित्रवती चारुदत्त की पत्नी का नाम है।

बढ़े। सानुदास सिद्धकच्छप ग्राम में पहुंचा। वहाँ सानुदास अपने पिता मित्रवर्मा के भृत्य सिद्धार्थक नाम के वणिक के घर में गया। उसने सानुदास को धन देना चाहा। सानुदास ने सार्थ के साथ ताम्रलिप्ति के लिए प्रस्थान किया। खण्ड-चर्म नामक पाशुपत का समागम। अटवी में प्रवेश। गंभीर गुफा वाली नदी। कालरात्रि के समान पुलिंदसेना का आक्रमण। संभ्रम के कारण दिग्भ्रांत होकर सानुदास का पलायन। सार्थ से भ्रष्ट होकर गहन वन में प्रवेश। ताम्रलिप्ति के लिए गमन। वहाँ पहुंचकर अपने मामा गंगदत्तके घर की तलाश। एक वणिक ने कहा कि गंगदत्त के घर को कौन नहीं जानता? जो पूर्णमासी के चन्द्रमंडल को नहीं जानता, वह गंगदत्त के घर को भी नहीं जानता। वह वणिक् स्वयं सानुदास को उसके घर ले गया। सानुदास का स्वागत। मामा ने भाणजे से कहा कि उसके अपने पास जो अतुल धन की राशि है, वह मित्रवर्मा की धनराशि से ही अर्जित की गयी है, अतः जितना धन कमाकर लाने की उसने प्रतिज्ञा की है, उससे चौगुना धन लेकर वह अपनी माँ के पास लौटकर जा सकता है। सानुदास ने उत्तर में कहा—मामाजी! अर्थोपार्जन के लिए मैंने जो दृढ़ प्रतिज्ञा की है, उसमें आप विघ्न उपस्थित न करें। तत्पश्चात् समुद्र यात्रा के लिए गमन करने वाले किसी सांयात्रिक के साथ, प्रशस्त तिथि और नक्षत्र में, देव-द्विज और गुरु की पूजापूर्वक, उसने अपनी यात्रा प्रारंभ की।[1]

जहाज का टूटना। समुद्र तट पर पहुंच एक अंगना को देखा। जहाज फट जाने के कारण वह भी उस तट पर आ लगी थी। राजगृह के निवासी सागर सार्थवाह और यवन देशोत्पन्न यावनी नाम की उसकी भार्या की वह पुत्री थी। उसका नाम था सागरदिन्ना। चम्पानिवासी मित्रवर्मा के सकल कलाविद सानुदास नामक पुत्र के गुणों की प्रशंसा सुनकर उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करने का सागर ने संकल्प किया था। दोनों ने परस्पर अपना परिचय दिया। समुद्र अपनी गंभीर ध्वनि से तूर्य का वादन कर रहा था, शिलीमुख श्रुति मधुर गान गा रहे थे, और उन्मत्त मयूर नृत्य कर रहे थे। ऐसे सुहावने समय में नायिका के स्वेदयुक्त आगे बढ़ते हुए दक्षिण कर को नायक ने थाम, उसे आलिंगनपाश में बांध लिया।[2]

दोनों प्रीतिपूर्वक रहने लगे। उन्होंने वृक्ष पर ध्वजा फहरा दी, रात्रि में अग्नि प्रज्वलित की, जिससे कोई नाविक उन दोनों को वहाँ से ले जाकर स्वदेश पहुंचा दे। यानपात्र में प्रस्थान। पूर्व की भाँति यानपात्र विपन्नावस्था को प्राप्त।

---

१. वही, भाग ३, १३३—२५२ पृ० २३४-४२

२. वही, भाग ४, २५३-३ ६, पृ० २४२-४७।

सागरदिन्ना का जल के प्रवाह में बह जाना। सानुदास एक ग्राम में पहुंचा। जिस किसी से वह कुछ पूछता, उसे उत्तर मिलता—"तुम्हारी बात समझ में नहीं आती।[१] किसी दुभाषिये की सहायता से वह अपने एक रिश्तेदार के घर गया। पता लगा कि वह पांड्यदेश में पहुंच गया है। प्रातःकाल किसी सत्रमंडप (धर्मशाला) में गया, जहां विदेशियों का क्षौरकर्म हो रहा था; कहीं मालिश की जा रही थी। पांड्य-मथुरा के जौहरी-बाजार में पहुंचा। किसी आभूषण का दाम कूतने के कारण उसे कुछ द्रव्य की प्राप्ति हुई। सानुदास की ख्याति सुनकर राजा ने उसे अपना रत्न-परीक्षक नियुक्त कर लिया। तत्पश्चात् थोड़ी पूंजी से अधिक धन कमाने के लिए उसने कपास का व्यापार किया। उसकी सात ढेरियां लगाई, किन्तु दुर्भाग्य से मूषक दीपक की जलती हुई बत्ती लेकर भागा और सारी कपास जलकर खाक हो गयी।

पांड्यमथुरा से उत्तर दिशा की ओर चला। वटवृक्ष के नीचे विश्राम किया। गौड़भाषा में बातचीत करने वालों से मुलाकात हुई। सानुदास शिविका में सवार हो ताम्रलिप्ति पहुंच अपने मामा से मिला।[२]

घर लौट जाने के बाद मामा ने उपदेश दिया। आचेर नामक वणिक् की अनेक वणिकों के साथ सुवर्णभूमि जाने की तैयारी। सानुदास भी साथ चल दिया। सुवर्णभूमि पहुंच जहाज ने लंगर डाला। प्रातःकाल सार्थवाह आदेश पा, कमर में भोजन का सामान बांध और गले में तेल के कुप्पे लटका कोमल-स्थूल और शोष-दोष आदि से रहित वेत्रलताका सहारा लेकर यात्रियों ने पर्वत पर चढ़ना प्रारम्भ किया। पर्वत की चोटी पर पहुंच कर रात्रि व्यतीत की। वहां एक नदी दिखायी दी जहां विविध आकार के पाषाण पड़े हुए थे। आचेर ने इन पाषाणों को स्पर्श करने की मनाही की। दूसरे तट पर बांसों का झुरमुट खड़ा था। उस पार हवा के चलने से बांस[३] इस पार झुक जाते थे। इन पर आरूढ़ होकर यात्री नदी के उस पार उतर गये। इस विभीषण पथ को वेणुपथ कहा गया है। यहां से दो योजन चलकर एक पतला रास्ता आया जिसके दोनों ओर अंधकार से पूर्ण एक भीम खड्ड दिखाई दिया। आचेर ने गीली और सूखी लकड़ियां पत्ते और तृण आदि एकत्र कर धुआं करने का आदेश दिया। धुएं को देख जौन और चीतों के चमड़ों के बने बख्तर-लदे बकरों की बिक्री के लिए किरात वहां आये। इन बकरों को यात्रियों ने कुसुम्भ, नीले और

---

१. मूल पाठ है 'धग्गिनु चोल्लिति' तमिल भाषा में।

२. वही भाग ५, ३०७-४२२, पृ० २४७-५८

३. यहां बांस के लिए भस्कर शब्द का प्रयोग है।

शाकलिका वस्त्र, खाण्ड, चावल, सिंदूर, नमक और तेल के बदले खरीद लिया। हाथ में लम्बे बांस ले, बकरों पर सवार होकर वे विकट मार्ग से आगे बढ़े। रास्ता इतना संकरा था कि यात्रियों का पीछे लौटना दुष्कर था, इसलिए सब लोग पंक्तिबद्ध होकर आगे ही चले गये। इस पथ का नाम अजपथ है जो बहुत भयंकर है। यात्री आगे बढ़ ही रहे थे कि इतने में बड़े-बड़े धनुष लिए म्लेच्छों की सेना दिखायी दी। क्रय-विक्रय करके वे लोग वापिस लौट गये। बकरों की पंक्ति आगे बढ़ी। पंक्ति में आचेर का छठा और सानुदास का सातवां स्थान था।

इस समय आचेर ने व्यापारियों को अपने-अपने बकरे मार डालने का आदेश दिया। सानुदास ने कहा कि ऐसे सुवर्ण को धिक्कार है जो प्राणिवध से प्राप्त किया जाये। सानुदास ने अपने बकरे का वध न कर, दूसरे के बकरे को ताड़ित किया। दुर्गम मार्ग पर चलने के कारण कुछ ही साथी शेष रह गये थे। व्यापारियों का दल विष्णुपदी गंगा पर पहुँचा। सबको भूख लग आई थी। नायक ने आदेश दिया कि बकरों को मारकर उनका मांस भक्षण किया जाय और फिर उनकी खाल को उलट, उसे सीं कर ओढ़ लिया जाये। उसे इस तरह ओढ़ा जाये कि खून से तर हुआ अन्दर का भाग ऊपर दिखायी पड़ने लगे। तत्पश्चात् यहाँ हेमभूमि[१] से आने वाले पक्षी उन्हें मांसपिण्ड समझ आकाश-मार्ग से रत्नद्वीप[२] को

१. वसुदेवहिंडी में रत्नद्वीप

२. जब चारुदत्त के साथी बकरों को मारने के लिए उतारू होगये तो चारुदत्त ने रुद्रदत्त से कहा—यदि मुझे ऐसा मालूम होता कि इस व्यापार में यह सब करना होता है तो मैं तुम लोगों के साथ कभी न आता। इस बकरे ने तो जंगल पार करने में कितनी सहायता की है !

रुद्रदत्त ने उत्तर दिया—तुम अकेले क्या कर सकते हो ?

चारुदत्त—मैं अपनी देह का त्याग कर दूँगा।

तत्पश्चात् चारुदत्त के मरणभय से अपने साथियों के साथ वह उस बकरे को मारने लगा। चारुदत्त उसे न रोक सका। चारुदत्त ने बकरे को धर्म का उपदेश दिया और णमोकार मन्त्र पढ़ा। रुद्रदत्त और उसके साथियों ने बकरे को मार दिया।

बृहत्कथाश्लोकसंग्रह (१८. ४६९—४८२, पृ० २६३—४) में इस प्रसंग पर सानुदास कहता है—ऐसे सुवर्ण को धिक्कार है जिसके लिए प्राणिवध करना पड़े। यह बकरा मुझे ही क्यों न मार दे !

यह सुनकर रोष और विषाद के कारण निष्प्रभ हुआ आचेर गुनगुनाते हुए (मूल में 'अम्वूकृत' शब्द है जिसका अर्थ होता है होठ बन्द कर गुन-

लेकर चल दिये। यह मार्ग समुद्रमार्ग की अपेक्षा और भी भीषण था। मार्ग में मांसपिंड को अपनी चोंचों से पकड़कर ले जाने वाले इन गीधों[१] में युद्ध होने लगा। अपनी चोंचें मार-मारकर उन्होंने मांसपिंड की खाल को चलनी[२] बना दिया। इस झगड़े में जिस मांसपिंड में सानुदास बंद था वह गीध की चोंच से छूटकर एक

गुनाना) बोला—अते बैल ! तू समय और असमय को नहीं समझता। कहाँ कृपाण का प्रयोग करना चाहिए और कहाँ कृपणों पर कृपा करना उचित है—यह तू नहीं जानता। अरे सिद्धांत के पंडित! तेरी करुणा स्पष्ट है कि एक जरासी बात के लिए तू सोलह आदमियों का बध करना चाहता है? तुझे पता है कि इस बकरे के मार देने पर चौदह प्राणियों को जीवन मिलेगा और न मारने पर इसके साथ तुम और हम सब रसातल को पहुंच जायेंगे। क्षुद्र प्राणी की रक्षा के लिए दुस्त्याज्य अपनी आत्मा का त्याग कभी नहीं करना चाहिए। अपनी आत्मा की तो दारा और धन से सदा रक्षा ही करनी चाहिए। अपने कथन के समर्थन में उसने भगवद्गीता का श्लोक पढ़ा, और जैसे कृष्ण ने अर्जुन को क्रूर कर्म करने के लिए प्रेरित किया, वैसे ही सानुदास से भी यह क्रूर कर्म कराया। तथा देखिये ४९३—९७, पृ० २)

१. वेत्रपथ, वेणुपथ और अजपथ का उल्लेख बृहत्कथाश्लोकसंग्रह (१८. ४३२-५१८) में कुछ विस्तार के साथ उपलब्ध है। महानिद्देस (१.७,५५ पृ० १३०) में जण्णुपथ, अजपथ, मेण्ढपथ, संकुपथ, छतपंथ, सकुणपथ, मूसिकपथ, दरिपथ और वेतपथ (वेत्ताचार) का उल्लेख है। सद्धम्मपज्जोतिकाटीका (पालि टैक्स्ट सोसायटी) में इन पथों की व्याख्या दी गयी है।

वसुदेवहिंडी के चारुदत्त की यात्रा प्रियंगुपट्टन से आरम्भ होती है। बृहत्कथाश्लोकसंग्रह का सानुदास सुवर्णभूमि पहुंचकर वेत्रपथ के सहारे पर्वत पर आरोहण करता है। वसुदेवहिंडी में यात्रा का मार्ग मध्य एशिया और बृहत्कथाश्लोकसंग्रह में मलय-एशिया जान पड़ता है। सानुदास की कहानी के कुछ अंशों से—जैसे शैलोदा नदी पार करना, बकरों और भेड़ों का विनिमय आदि जान पड़ता है कि सानुदास का मार्ग भी मध्य एशिया का ही मार्ग रहा होगा। किन्तु गुप्तकाल में सुवर्णद्वीप का महत्त्व बढ़ जाने से कहानी का घटना-स्थल मध्य एशिया के स्थान पर सुवर्णभूमि कर दिया गया। देखिए, सार्थवाह, पृ० १३९

२. अन्यत्र (५०९ श्लोक में भारुण्ड का उल्लेख है जैसा कि वसुदेवहिंडी में है।

तालाब में गिर पड़ा।[१] सानुदास ने अपने शरीर को कमलपत्रों से घर्षित किया। तट पर पहुँचकर कुछ देर विश्राम किया, फिर तपोवन में प्रवेश किया। वहाँ पिशांग जटाधारी एक मुनि के दर्शन किये।[२]

चंपानगरी केवल पाँच कोस रह गयी थी। वहाँ पहुँचकर सानुदास ने अपने उन्हीं धूर्त मित्रों से घिरे हुए ध्रुवक को देखा। सानुदास मित्रों से गले मिला। जिन्होंने उस पर गोबर का पानी फेंककर उसे तिरस्कृत किया था; उनका दरिद्रता से उद्धार किया। ध्रुवक ने सलाह दी कि माँ को दरिद्रवाटक में से लाकर अपने निज घर में रक्खा जाये। जैसे कुबेर अलकानगरी में प्रवेश करता है, वैसे ही सानुदास ने चम्पा में प्रवेश किया। राजा के दर्शन किये। परस्पर दर्शन स्पर्शन के बाद राजा ने आभूषण आदि प्रदान कर सानुदास का सत्कार किया। वह अपनी माँ से मिलने गया। माँ ने अर्घ प्रदान किया।[३]

---

१. उत्तराध्ययन को नेमिन्द्रीय वृत्ति (१८, पृ० २५१ अ—२५२) में पंचशैल द्वीप से आनेवाले भारुंड पक्षियों का उल्लेख है। पंचशैल प्रस्थान करने वाले यात्री समुद्र तट पर स्थित वट वृक्ष की शाखा को पकड़ कर वृक्ष पर पहुंच जाते। वहाँ तीन पैर वाले सोये हुए पक्षि युगल के बीच के पैर को पकड़, उसमें अपने आपको एक कपड़े से बांध लेते। गरुड़ पक्षी को विष्णु का वाहन कहा गया है। इसका आधा भाग मनुष्य का है और आधा पक्षी का। महाभारत (१. १६) में इसकी कथा दी है।

Pseudo Callisthenes पुस्तक १.४१ में कच्चे मांस का भक्षण करने वाले बृहत्काय पक्षियों का वर्णन है। सिकन्दर ने उसपर सवारी कर आकाश की यात्रा की और फिर वापिस लौट आया। बुद्धघोष की कथाओं में इसे हत्थिलिंग कहा है; इसमें पाँच हाथियों जितनी ताकत होती है। धम्मपद अट्ठकथा के अनुसार रानी सामवती के गर्भवती होने पर राजा ने उसे पहनने के लिए लाल चोंगा दिया। हत्थिलिंग रानी को मांसखण्ड समझकर उसे आकाश में उड़ा ले गया। कथासरित्सागर (२.१.४६-४) भी देखिए। मडागास्कर, न्यूजीलैंड आदि प्रदेशों में इन बृहत्काय पक्षियों की हड्डियों और अण्डों के जीवविशेष पाये गये हैं, जो इन पक्षियों के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं। देखिए एन०एम० पेंजर, द ओशन आफ स्टोरी, जिल्द १, पृ० १०३—५, तथा १४१ फुटनोट।

२. छठा भाग, ४२३—५१८, पृ० २५८—६८

३. ७ वां भाग, ५९२—६१३, पृ० २७४—७६

सानुदास ने सिर से अपनी मां के चरणों का स्पर्श कर वंदन किया। अपने बेटे को हाथ से पकड़कर वह घर के अन्दर ले गयी। वहां पहली पत्नी को बैठे हुए देखा। सानुदास ने गंगदत्ता, सागरदिन्ना, सिद्धार्थक वणिक, और आचेर आदि के वृत्तान्त सुनाये, तथा मामा गंगदत्त द्वारा सत्कार किये जाने, समुद्र यात्रा करने और यात्रा करते समय जहाज के फटने आदि की कथा सुनाई। सानुदास परिवार के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वसुदेवहिंडी और बृहत्कथाश्लोकसंग्रह में केवल कथाओं, कथा-प्रसंगों, चरित्रों, चरित्रगत विवरणों, अध्यायों के नामों और वातावरण का ही साम्य नहीं, भाषा और शब्दावलि का भी साम्य देखने में आता है, यद्यपि एक रचना गद्य में है और दूसरी पद्य में। बृहत्कथाश्लोकसंग्रह में कितने ही शब्द ऐसे हैं जो प्राकृत भाषा से ज्यों-के-त्यों ले लिये गये। ऐसे भी अनेक शब्दों का प्रयोग यहां हुआ है जो अप्रसिद्ध हैं और संस्कृत साहित्य में प्रायः अन्यत्र नहीं मिलते।

वसुदेवहिंडी और बृहत्कथाश्लोकसंग्रह की समान विशेषताओं का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि दोनों ग्रंथकर्ताओं के सामने कोई ऐसी कथा संबंधी कृति रही होगी जिसको आधार मानकर उन्होंने अपनी कृतियों की रचना की। गुणाढ्य की बृहत्कथा के अनुपलब्ध होने से यह अत्यन्त निश्चयपूर्वक कहना कठिन है कि इन कृतियों का आधार यही बृहत्कथा थी। फिर भी इस संबंध में प्रोफेसर एफ लाकोत और डाक्टर एलये आल्सडोर्फ जिन निष्कर्षों पर पहुंचे हैं, उनसे पता लगता है कि वसुदेवहिंडी बृहत्कथा का रूपान्तर होना चाहिये। अवश्य ही वसुदेवहिंडी की अपेक्षा बृहत्कथाश्लोकसंग्रह काव्य सौष्ठव की शैली में लिखा हुआ अधिक सरस काव्यग्रंथ है जिसमें काव्य छटा के साथ-साथ हास्-परिहास और व्यंग्य का पुट देखने में आता है। घटना चक्र यहां अधिक विस्तृत, व्यवस्थित और पूर्ण दिखाई देता है। काम प्रसंगों का वर्णन अधिक उद्दामता से किया हुआ जान पड़ा है। वसुदेवहिंडी में कितने ही प्रसंग बहुत संक्षिप्त हैं और कहीं तो अस्पष्ट रह जाते हैं। ग्रन्थ के सम्पादन में उपयोगी किसी शुद्ध प्रति का उपलब्ध न होना भी इसका कारण हो सकता है। जिन प्रतियों का सम्पादन में उपयोग हुआ है वे अनेक स्थलों पर त्रुटित हैं। फिर, धर्मप्रधान कथा-ग्रन्थ होने से धार्मिकता की रक्षा करना भी आवश्यक हो जाता है। ●

---

१. ८ वां भाग, ६१४—७०२, पृ० २७६—८४

राजा-सम्प्रति

सातवाँ परिच्छेद

पूर्वानुवृति

इतिहास-परिचय

बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी राजगृही नगरी में जन्मे। इसी प्रकार अन्तिम प्रति वासुदेव जरासंध भी राजगृही में ही जन्मा था। महावीर स्वामी के समय में मगधराज बिम्बिसार भी राजगृही नगरी में राज्य करता था; किन्तु ये राजगृहियाँ अलग-अलग कही जाती हैं। बिम्बसार की राजधानी वाली राजगृही उसके पिता प्रसेनजित राजा ने बसाई थी। प्रसेनजित् राजा के समय तक मगध के राजाओं की राजधानी कुशाग्रपुर मानी जाती थी; किन्तु उसमें बारम्बार अग्नि का उपद्रव होने से मगधपति प्रसेनजित् ने नवीन नगरी बसाकर उसका नाम राजगृही रखा था। प्रसेनजित् के श्रेणिककुमार आदि सौ पुत्र थे, किन्तु बड़ा होने से श्रेणिक गद्दी पर बैठा। वह प्रारम्भ में बुद्ध के समागम में आने से बौद्ध बना था; किन्तु अनाथी मुनि के दर्शन और चिल्लणा के प्रयत्न से वह शुद्ध जैन हो गया। इतने ही में श्रीमत् वीरप्रभु को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और वे राजगृही नगरी में पधारे। वीर प्रभुकी अमृतमयी वाणी श्रवणकर मगधराज श्रेणिक उनका अनन्य भक्त हो गया। मालवे का राजा चण्डप्रद्योत् उनका अविरिति श्रावक था। वत्स देश की कोशम्बीका राजा शतानिक और उसका पुत्र उदयन सिन्धु-सौवीर देश के वित्तिभय नगर का राजा उदायी, दशार्णदेशका दशार्णभद्र, वैशाली नगरी का चेटक राजा, काशी और कौशल देश अयोध्या के राजालोग क्षत्रियकुण्ड का राजा नन्दिवर्धन, पोलाशपुरका विजय राजा, पोतनपुर का प्रसन्नचन्द्र, हिमालय के उत्तर में पृष्ठ चम्पा के शाल और महाशाल, कनकपुर का प्रियचन्द्र, महापुरी नगर का बलराजा और चम्पानगरी का दत्तराजा आदि जैन राजा उनके भक्त थे।

श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार, मेघकुमार, हल्ल और विहल्लकुमार एवं नन्दिषेण कुमार आदि ने श्रीवीर प्रभु से दीक्षा ग्रहण की थी। वैशाली के चेटक महाराजा की कुमारियाँ-मृगावती, सुजेष्ठा, चिल्लणा आदि ने भी व्रत ग्रहण किया था। श्रेणिक ने अनेक वर्षों तक मगध राज्य का शासन करते हुए जैनधर्म की आराधना की। बाद में उनका पुत्र कोणिक मगधराज हुआ। इसने चम्पा-

नगरी बसाकर वहाँ अपनी राजधानी स्थापित की। अपने बाहुबल से तीन खण्ड पृथ्वी पर अधिकार जमाकर समस्त शत्रु राजाओं को आधीन बना लिया। इस प्रकार वह अजात शत्रु के नाम से प्रसिद्ध हुआ और इसका पुत्र उदायी भी इसी की तरह महावीर का भक्त था। यह अजात शत्रु बौद्धों का शत्रु था।

बुद्ध के एक शिष्य देवदत्त ने बुद्ध से निवेदन किया कि—भगवन! हमें अपने साधुओं के लिये वनवास, जीर्ण वस्त्र धारण एवं गोचरी से आहार ग्रहण एवं मांस का त्याग, इन चार नियमों का पालन आवश्यक बना देना चाहिए; किन्तु गौतमबुद्ध ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। तब देवदत्त ने अजात-शत्रु के आश्रय में आकर नया मत चलाया; किन्तु वह अधिक दिनों तक नहीं चला। अजातशत्रु भी जब विजय यात्रा करने के लिए निकला तब उसने सावत्थी नगरी पर अधिकार जमाकर कपिल वस्तु को जीतने के बाद नष्ट कर दिया। उनके मांसाहार आदि दोषों से वह क्रुद्ध हुआ जान पड़ता है; अर्थात् वह दुनिया को ठगने के लिए इस प्रकार के पाखण्ड पसन्द नहीं करता था; किन्तु इस प्रकार संसार में उसका एक छत्र राज्य होने पर भी उसने बौद्ध धर्म का नाश नहीं किया।

कई वर्षों तक संसार का साम्राज्य भोगने के पश्चात् इसका पुत्र उदायी गद्दी पर बैठा। पिताकी मृत्यु के कारण इस नये चम्पापति को अपनी राजधानी में चैन नहीं पड़ सका। वह बारम्बार पिता को याद करके शोकाकुल रहने लगा। अतएव मन्त्रियों ने नवीन नगर बसाने की योजना की, और उसके लिये उपयुक्त भूमि की खोज करने पर गंगा के किनारे एक सर्वोत्तम भूमि दिखाई दी। अतएव वहाँ नवीन नगरी की स्थापना कर उसका नाम पाटलीपुत्र रक्खा और शुभ मुहूर्त्त में उदायी राजा ने वहाँ अपनी राजगद्दी प्रतिष्ठित की।

जिस प्रकार अजातशत्रु ने दीर्घकाल पर्यन्त राज्य शासन किया; उसी प्रकार उसके पुत्र ने भी शासन चलाया; किन्तु प्रभु महावीर स्वामी की विद्यमानता में ही श्रेणिक की मृत्यु हो गयी और अजातशत्रु गद्दी पर बैठा। महावीर स्वामी के पश्चात् गौतमस्वामी को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ और बारह वर्षों तक केवली प्रर्याय का पालन कर वे मोक्ष को प्राप्त हुए। सुधर्मा गणधर की वन्दना करने के लिए अजातशत्रु विशाल ऋद्धि सहित आया था।

जिस वर्ष में श्रीप्रभु महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया; उसी समय मालव प्रदेश की राजधानी उज्जयिनी में पालक का राज्याभिषेक हुआ था। इसी प्रकार जम्बूस्वामी की प्रभवस्वामी के साथ दीक्षा भी उसी वर्ष हुई थी; किन्तु श्रीमान महावीर के पाट पर गौतम गणधर नहीं विराजे, वरन् स्वत भगवान ने ही सुधर्मास्वामी को पट्टोहरण कराया था। इसलिए गौतमस्वामी ने गच्छ का

भार सुधर्मास्वामी को सौंपकर महावीर के पश्चात् उन्हें पट्टधर-पद पर स्थापित किया। श्री महावीर स्वामी के बीस वर्ष पश्चात् जब सुधर्मा स्वामी मोक्ष को प्राप्त हुए, तब उनके बाद जम्बूस्वामी उस पदपर प्रतिष्ठित हुए; और दीर्घकाल पर्यन्त जम्बूस्वामी केवलीपन से विचरकर श्रीमहावीर से ६४वें वर्ष मोक्ष को प्राप्त हुए।

भगवान् के निर्वाण प्राप्त करने के साठ वर्ष पश्चात् मगधराज उदायी को बिना पुत्र के मृत्यु हो जाने से मगध का राज्य नन्द नाम के एक पुरुष के हाथ में चला गया। उसी वर्ष पालक का भी नाश हो जाने से मालवा का राज्य भी मगध के साथ सम्मिलित हो गया।

उस नन्द के वंश में भी क्रमशः नौ नन्द हुए। वे नवों नन्द जैनधर्म के अनुयायी और पराक्रमी थे। इनमें पहले नन्द के राज्य शासन के आरम्भ से ही कल्पक नामक एक महाअमात्य नियुक्त हुआ था, उसी के वंशज क्रमशः नन्दों के प्रधान मन्त्री पद पर प्रतिष्ठित होते रहे। ये ब्राह्मण होते हुए भी जैनधर्मानुयायी थे।

जब नवम नन्द पाटलीपुत्र की गद्दीपर बैठा, उस समय कल्पक वंश का शकटाल नामक महामन्त्री था। उसके श्रीयक और स्थूलिभद्र नामके दो पुत्र थे इसी प्रकार यक्षादि सात पुत्रियाँ भी थीं। नन्द राजा की सभा में वररुचि नाम का एक महा विद्वान् ब्राह्मण था; साथ ही व्याडि नामका एक पण्डित और भी था।

वररुचि, व्याडि और पाणिनी ये तीनों एक ही गुरु के शिष्य थे। इनमें पाणिनी मूर्ख था और उसे कुछ भी नहीं आता था। अतएव उसने हिमालय पर जाकर तप किया और शङ्कर नाम के देवता से वरदान पाकर वह प्रखर पण्डित हो गया। इसके बाद उसने अष्टाध्यायी की रचना की; जिसके सम्मुख वररुचि आदि के व्याकरण भी निस्तेज प्रतीत होने लगे।

यह वररुचि प्रतिदिन ही राजा की सभा में एक सौ आठ नये काव्य सुनाया करता था। अतः राजा शकटाल मन्त्री के कथनानुसार एक सौ आठ स्वर्णमुद्राएँ प्रदान करता था, किन्तु इस प्रकार उस ब्राह्मण को प्रतिदिन स्वर्ण-मुद्राएँ ले जाते देखकर मन्त्री को चिन्ता हुई कि थोड़े ही समय में राज-भण्डार खाली हो जायगा। अतएव उसने वर रुचि के श्लोकों को पुराना सिद्ध करके वे एक सौ आठ स्वर्णमुद्राएँ दिलवाना बन्द करा दी। फलतः वर रुचि इस वैर-दाँव को मनमें रखकर बदला लेने के लिए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

वररुचि गंगा नदी में एक यन्त्र लगाकर एक सौ आठ स्वर्णमुद्राओं की थैली उसमें रख देता और प्रातःकाल सबके सम्मुख वह एक सौ आठ श्लोकों

द्वारा गंगा की स्तुति करता, और यन्त्र की चाबी दबाते ही स्वर्णमुद्राओं की थैली उछलकर उसकी गोद में आ गिरती थी। इस प्रकार रात को वह जाकर गंगा में थैली रख आता और प्रभात में वह उसकी गोद में आजाने से उसकी ख्याति सर्वत्र फैल गई। जब राजा ने यह बात सुनी तो उसे भी बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने मन्त्री से पूछा कि 'यह क्या रहस्य है ?

मन्त्री ने उसके पीछे गुप्तचर लगाकर वह रहस्य जान लिया और युक्ति-पूर्वक वह एक सौ आठ स्वर्ण मुद्रा की थैली गंगा में से निकलवा ली। दूसरे दिन प्रातःकाल राजा अपने मन्त्री एवं अन्य लोगों के साथ वररुचि का चमत्कार देखने गंगा के तटपर पहुँचा। वररुचि ने बड़े ही आडम्बर के साथ गंगा की स्तुति करके यन्त्र की चाबी दबाई, किन्तु नित्य की तरह वह मुहरों की थैली उसकी गोद में नहीं गिरी। इसके बाद बारम्बार यन्त्र की चाबी दबाने पर भी जब कोई परिणाम नहीं निकला; तब उन हजारों मनुष्यों के सम्मुख उसे लज्जित होना पड़ा।

उधर शकटाल मन्त्री ने वह एक सौ आठ स्वर्ण मुद्राओं की थैली वररुचि के सम्मुख रखते हुए कहा :—"देखो, यह तुम्हारी ही एक सौ आठ स्वर्णमुद्राओं की थैली तो नहीं है ?"

वररुचि ने थैली को तो देखते ही पहचान लिया; किन्तु यदि वह 'ना' कहता तो वे एक सौ आठ मुहरें हाथ से जातीं; और यदि 'हाँ' कहता तो वह पाखण्डी सिद्ध होता ! फिर भी लोभवृत्ति बलवान होने से उसने 'हाँ' कहकर थैली ले ली और वह कपटी लोगों के बीच तिरस्कार का पात्र हुआ।

शकटाल का बड़ा पुत्र स्थूलिभद्र राजा की प्रियपात्र कोशा वेश्या के घर दिनरात पड़ा रहता था। उसे वहाँ संसार सुख भोगते हुए बारह वर्ष का समय व्यतीत हो गया। उधर कालान्तर में शकटाल मन्त्री के स्वर्गवास के पश्चात नन्दराजा ने श्रीयक को बुलाकर जब मन्त्री की पदवी देना चाहा; तब उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि :—"मेरे ज्येष्ठ भ्राता स्थूलिभद्र कोशा वेश्या के घर रहते हैं, उन्हीं को बुलाकर यह पदवी दीजिये !"

श्रीयक के यह वचन सुनकर नन्दराजा ने स्थूलिभद्र को बुलवाने के लिये कोशा के घर पर सिपाही भेजे। अतः कोशा से अनुमति लेकर स्थूलिभद्र नन्दराजा के सम्मुख उपस्थित हुआ। तब राजा ने उसके पिता का वृत्तान्त सुनाकर मन्त्री-पदवी उसे देनी चाही, किन्तु स्थूलिभद्र ने थोड़ी देर विचार करने की आज्ञा माँगी और राजा ने शीघ्र विचार करके उपस्थित होने के लिए कहा।

स्थूलिभद्र अशोक वाटिका में जाकर विचार करने लगा। विचार करते-करते ही उनके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया और अपने ही हाथों से पंचमुष्टी लोच, यानी अपने ही सिर के बाल नोचकर साधु के समान वह राजसभा में आया और राजा को धर्मलाभ प्रदान किया। इसके बाद स्थूलिभद्र साधु बनकर चले गये, तब राजा ने मन्त्रि-पद उनके छोटे भाई श्रीयकको प्रदान किया। स्थूलिभद्र ने संभूति-विजय आचार्य के समीप जाकर उनसे दीक्षा ग्रहण की और क्रमश: बहुश्रुत हो गये। उस समय में संभूति विजय और भद्रबाहु ये चौदह पूर्वधर जैन शासन में स्तम्भ रूप माने जाते थे। स्थूलिभद्र भी 'चौदह पूर्व' तक शिक्षा प्राप्त करते रहे। इसीलिए अन्तिम चौदह पूर्वी स्थूलिभद्रजी ही माने मये।

श्रीमहावीर स्वामी के पश्चात् ६४ वें वर्ष जम्बूस्वामी मोक्ष को प्राप्त हुए। तत्पश्चात् उनके पाटपर प्रभवस्वामी तीसरे पट्टधर हुए। प्रभवस्वामी विन्ध्याचल के निकटवर्ती जयपुर नगर के राजा विन्ध्य के पुत्र थे। प्रभव युवराज थे और उनके एक भ्राता प्रभु के नाम के दूसरे भी थे। भवितव्यतावश विन्ध्यराजा ने युवराज प्रभव को राज्य न देकर छोटे पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बना दिया। इससे स्वाभिमानी प्रभव ने पिता का राज्य त्यागकर विन्ध्याचल के समीप की भूमि पर एक नया ग्राम बसाया और लूट-पाट कर वह अपनी आजीविका चलाने लगा। इस प्रकार धीरे-धीरे वह पाँच सौ चोरों का सरदार बन गया। एक दिन वे सब जम्बूस्वामी का घर लूटने के लिए आये किन्तु वहाँ उनका उपदेश सुनकर वे सभी वैराग्यवान होकर उनसे दीक्षा लेने के बाद आत्म कल्याण की साधना में प्रवृत्त हो गये। इस प्रकार एक महान् लुटेरों का सरदार जैन धर्म का एवं श्री महावीर का तीसरा पट्टधर चौदह पूर्व का ज्ञाता हो गया। जम्बूस्वामी को सुधर्मा स्वामी के मोक्ष गमन के पश्चात् केवल ज्ञान होने से श्री महावीर के बाद ४४वें वर्ष प्रभव चौदह पूर्व के ज्ञाता होकर युग प्रधान हुए। ऐसे युग प्रधान भी एकावतारी होते हैं।

श्री महावीर के पश्चात् चौंसठवें वर्ष जम्बूस्वामी मोक्ष को प्राप्त हुए और उसी वर्ष में शय्यंभव नामक राजगृही के समर्थ ब्राह्मण को प्रभवस्वामी ने अपने पाट पर स्थापित करने के लिए दीक्षा दी और वे 'चौदह पूर्व' के ज्ञाता हो गये। वीर के पश्चात् ७०वें वर्ष में प्रभवस्वामी शय्यंभव सूरि को अपने पाट पर स्थापित कर स्वर्गलोक में गये। चौदह पूर्व के ज्ञाता भी जघन्य से छठे देवलोक तक ही जा सकते हैं।

नवम नन्द के समय में भद्रबाहु और संभूति विजय विद्यमान थे। जैसा कि स्थूलिभद्र के राजसभा से निकलकर संभूतिविजय से वीर संवत् १४६ में दीक्षा

लेने का वृत्तान्त हम पहले ही देख चुके हैं। उस नवम नन्द के पश्चात् पाटलीपुत्र की गद्दी पर मौर्य्यवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त भारत के सम्राट् हुए।

आठवाँ परिच्छेद

चाणक्य की चतुराई

चाणक्य नाम का निर्धन ब्राह्मण निर्धनावस्था से उकता कर धन उपार्जन करने के लिए निकला। उसने सुना कि पाटलीपुत्र का नन्द राजा ब्राह्मणों को स्वर्ण प्रदान करता है; अतएव वह उसी ओर चल दिया। दैवयोग से नन्द के द्वारपालों-द्वारा न रोका जाने पर वह राजमहल में प्रविष्ट होकर सीधा नन्दराजा के सिंहासन पर जा बैठा। उसी समय स्नान करके अनेक प्रकार के आभूषणों को धारण कर राजा ज्योतिषी के साथ राजसभा में आया, तो चाणक्य ब्राह्मण को सिंहासन पर बैठा देखकर ज्योतिषी ने कहा :—"देव ! इस प्रकार सिंहासन पर आकर बैठ जानेवाला व्यक्ति आपके राज्य का नाश करने वाला सिद्ध होगा। अतएव मीठे वचन द्वारा इसे आप सिंहासन पर से उठा दीजिये; क्योंकि अग्नि को सुलगाने से तो हानि हो सकती है !"

राजा की आज्ञा से दासी ने दूसरा आसन लाकर चाणक्य से कहा :— "हे ब्राह्मण देवता ! तुम इस आसन पर बैठो और महाराज का आसन छोड़ दो !"

यह सुनकर उस आसन पर अपना कमण्डलु रखते हुए चाणक्य ने कहा— "इस आसन पर मेरा कमण्डलु रहेगा !"

दासी ने तीसरा आसन लाकर रखा तो उस पर चाणक्य ने अपना त्रिदण्ड रख दिया। इस प्रकार जितने भी आसन लाकर रखे गये, उन सब पर अलग-अलग वस्तुएँ रखते हुए चाणक्य ने उन्हें खाली नहीं रहने दिया।

राजा चाणक्य के इस विचित्र व्यवहार से क्रुद्ध हो उठा, और उसको पाँव पकड़कर पछाड़ दिया। तब क्रुद्ध होकर चाणक्य ने प्रतिज्ञा की कि :— "अभिमानी राजा ! तेरे वंश सहित तुझे राज्य से जड़मूल से उखाड़ देने पर ही मैं तुझे छोड़ूँगा।"

"जा, तुझसे जो हो सो कर देना, धूर्त !" यों कहते हुए नन्द के सुभटों ने गर्दन पकड़कर चाणक्यको बाहर निकाल दिया।

नगर से बाहर निकलकर चाणक्य ने अपना क्रोध शान्त होने पर विचार किया कि :—"अरे रे ! मैंने कितनी कठोर प्रतिज्ञा कर डाली ! क्रोध के वश होकर की हुई ऐसी विषम प्रतिज्ञा को मैं कैसे पूर्ण कर सकूँगा ? किन्तु जो कुछ होना था सो तो हो ही गया; अब तो मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी ही

क्रमशः

CREATIVE LIMITED

12, Dargah Road, Post Box 16127 Cal-700 017
Phone : (033) 240-3758/1690/3450/0514
Fax : (033) 2400098, 2471833

SURANA MOTORS PVT. LTD.

24A, Shakespeare Sarani, 84, Parijat, 8th floor
Calcutta-700071 Phone : 2477450/5264

M/s. J. KUTHARI PVT. LTD.

12, India Exchange Place, Calcutta-1
Phone : 220-3142, Resi. 475-0995

PARK PLACE HOTEL

SINGHI VILLA, 49/2, Gariahat Road,
Calcutta-700019 Phone : 475-9991/9992/7632

M/s. METROPOLITAN BOOK COMPANY

93, Park Street, Calcutta-700016
Phone : 292418 Resi. 464-2783

M/s. D. SANDEEP & CO.

78, J. S. S. Road, Ratna Deep,
Opera House, Mumbai

BOYD SMITHS PVT. LTD.

8, Netaji Subhas Road, B-3/5, Gillander House
Calcutta-700001
Ph. : (O) 220-8105/2139 (R) 244-0629/0319

NAHAR

5/1, A. J. C. Bose Road, Calcutta-700 020
Phone : 2476874 Resi 2443810

P. C. JAIN

B-14, Sarvodaya Nagar, Kanpur-208005
Phone : 29-5552/5955

ARBEITS INDIA

8/1, Middleton Road, 8th Floor, Room No. 4
Calcutta-700071 Ph : 296256/8730/1029
Resi. : 2476526/6638/240526
Telex : 0212333 ARBI IN Fax : 0091-33290 174

JAYANTI LAL & CO.
20, Armenian Street, Calcutta-700001
Phone : 25-7927/6734/3816 Resi. : 400440

HARAKH CHAND NAHATA
21, Anand Lok, New Delhi-110 049
Phone : 6461075

RAJIV LALWANI
12, Duff Street, Calcutta
Phone : 2556705

G. M. SINGHVI
M/s. WILLARD INDIA LIMITED
Mcleod House
13, Netaji Subhas Road, Calcutta-700 001
Phone : 248-7476-8 (O) 475-4851/1483 (R)
Fax : 248-8184

RATAN LAL DUNGARIA
16B, Ashutosh Mukherjee Road, Calcutta-20
Phone : Resi. 455-3586

KUMAR CHANDRA SINGH DUDHORIA
7, Camac Street, Calcutta-700017
Phone : 242-5234/0329

GLOBE TRAVELS
Contact for better & Friendlier Service
11, Ho Chi Minh Sarani, Calcutta-700071
Phone : 2428181

PARSAN BROTHERS
Diplomatic & bonded Stores Suppliers
18-B, Sukeas Lane, Calcutta-1
Phone : 242-3870 Office Fax : 242-8621

ABHAY CHAND BOTHRA
Phone : Resi. 298-4729/298755

C. H. Spinning & Weaving Mills Pvt. Ltd.
Bothra Ka Chowk
Gangasahar, Bikaner

APRAJITA BOYD
9/10, Sitanath Bose Lane, Salkia, Howrah-711106
Phone : 6653666, 6652272

B. W. M. INTERNATIONAL
Manufacturers & Exporters
Peerkhanpur Road, Bhadohi-221401 (U.P.)
Phone : Office 05414-25178, 25778, 25779
Bikaner Phone : 0151-522404, 25973
Fax : 05414-25378 (U.P.) 0151-61256 (Bikaner)

SUDEEP KUMAR SINGH DUDHORIA
Phone : Off. 252565/6315 Resi. : 4753133

A-D. ELECTRO STEEL CO. (PVT.) LTD.
Mfrs of Carbon Steel, Cast Steel, M. V. Steel &
all sort Alloy Steel Casting as per specification
Baltikuri (Surkhimill) Kalitala, Howrah
Office : 2203889/0714 Works : 6670485/2164
Resi. : 471-8393 Fax : 91-33-6672164

UJJWAL TRADING PVT. LTD.
Regd. Office : 11, Clive Row,
3rd Floor, Room No. 14, Calcutta-700001
Phone : Off. 242-4131/4756

ROYAL TOUCH OVERSEAS CORPORATION
47, Pandit Purushottam Roy Street, 2nd floor,
Calcutta-700 007 India
Phone : 91-33-230 1329, 2321033
Fax : 91-33-230 2413

SMT. KUSUM KUMARI DUGAR
166, Jodhpur Park, Calcutta-700068
Phone : 4720610

VIJAY KUMAR BHANDAWAT
20/1, Maharshi Devendra Road
5th Floor, Calcutta-7
Phone : 239-6823, 25-0623

GRAPHITE INDIA LIMITED
Pioneers in Carbon/Graphite Industry
31, Chowringhee Road, Calcutta-700 016
Phone : 2264943, 292194 Fax : (033) 2457390

KUSUM CHANACHUR
Prop· **CHURORIA BROTHERS**
Mfg. by—K. E. C. Food Product
P. O. Azimganj, Dist. Murshidabad
Phone : STD 03483-53234
Cal—230-0432, 231-2802

ARIHANT ELECTRIC CO.
Manufacturer of Electric Cables
21, Rabindra Sarani, Calcutta-700007
Phone : 255668

LALCHAND DHARAMCHAND
Govt. Recognised Export House
12, India Exchange Place, Calcutta-700 001, India
Phone (B) 220-2074/8958 (D) 220-0983/3187
Cable : SWADHARMI Fax : (033) 220975
Resi. : 464-3235/1541 Fax : (033) 4640547

NIRMALA BOTHRA
7/1/A, Nafar Kundu Road, Calcutta-700026
Phone : 475-5503

REENA MAHENDRA BHANDARI
13, Sahakar, 'B' Road, Church Gate, Bombay-20
Phone : 285-4970 Resi.
285-3762/65, 204-1792 Office

PRITAM ELECT. & ELECTRONICS P LTD.
22, Rabindra Sarani, Shop No. G-136
Calcutta-700073 Tel. (033) 262210

आ. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञानमंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा
ता. गांधीनगर, पिन-382009

मानव की तृष्णा मेरु पर्वत समान है। मन की शुद्ध भावना से इन्सान अपने कर्म क्षय कर सकता है

महावीर जयन्ती के शुभ अवसर पर हार्दिक शुभ कामनाएँ

G.C. Jain

A-40 N.D.S.E - II

New Delhi - 110049

Tel - 6445095/24011

WB/NC - 330

'Titth ayara'

Registered with the registered
of Newspapers for India under
No. R.N. 3018/77

Vol. XXI No. 4

July 1997

जिसने दुःख को समाप्त कर दिया है उसे मोह नही है, जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है। जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास कुछभी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।

महावीर जयन्ती के शुभ अवसर पर उनका संदेश जन–जन तक पहुँचे इस शुभ कामना के साथ –

Kamal Singh Rampuria
Rampuria Mansions
17/3, Mukhram Kanoria Road, Howrah
Phone No. : 666-7212/7225